Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 12, Issue 1 | May 2024 - October 2024 | pp. 40-46

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती : जीवन एवं दार्शनिक विचार

डॉ. महेंद्र सिंह राठौड़

सहायक आचार्य, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, बालेसर, जोधपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारतीय पुनर्जागरण के पुरोधा, आर्य समाज के संस्थापक, वेदोद्धारक, प्रख्यात समाज सुधारक, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्राचीनतम वैदिक धर्म, दर्शन, संस्कृति और परंपराओं को स्थापित करके सामाजिक समरसता के मार्ग को अपनाते हुए, सती प्रथा, बाल विवाह, जातिवाद आदि सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध किया और एक ईश्वरवाद की स्थापना के मंतव्य का प्रचार करते हुए विश्व को योग साधना पर आधारित अध्यात्मवाद का दर्शन दिया। आर्य समाज के नियमों एवं उद्देश्यों के माध्यम से संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। तत्कालीन अंग्रेजी शासन का विरोध करते हुए स्वराज्य का नारा दिया और सक्रिय रूप से स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश तथा वेदभाष्य में स्वराज्य को सर्वोपरि मानते हुए विदेशी आक्रांताओं और शासकों का घोर विरोध किया। शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द ने प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का पुनः उद्धार किया और वंचितों, दलितों, महिलाओं तथा समाज के सभी वर्गों के लिए शिक्षा के द्वार खोले। प्राचीन वैदिक देवभाषा संस्कृत पर आधारित हिंदी भाषा को अपनाया और अपनी मातृभाषा गुजराती होते हुए भी अपना अधिकांश साहित्य संस्कृत तथा हिंदी भाषा में रच कर एक नए युग की नींव रखी। महिलाओं तथा समाज के विभिन्न वर्गों को वेद पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार दिलाने के लिए आंदोलन चलाया। वस्तुतः स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन के कुछ ही वर्षों में शिक्षा, समाज, वैदिक धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार का जो सूत्रपात किया उसका प्रभाव विगत दो सौ वर्षों से संपूर्ण विश्व में देखने को मिला है।

संकेताक्षर—*जीवनी,आर्य समाज, सत्यार्थ प्रकाश,नारी उद्धार, कर्म, उपासना, वेद, राष्ट्र भाषा*

प्रस्तावना

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात प्रांत के राजकोट जिला के मोरवी टंकारा नामक ग्राम में 12 फरवरी 1824 में हुआ।[1] उनके बचपन का नाम मूलशंकर था। उनके पिता का नाम कृष्णजी लाल और माताजी का नाम अमृता वेन था। मूल शंकर की प्रारंभिक शिक्षा घर में ही हुई। 16 वर्ष की आयु में बहिन तथा बाद में चाचा के देहांत की घटना के बाद उन्हें वैराग्य हुआ और मृत्यु को जीतने का संकल्प लेकर घर छोड़ दिया। पिता जी ने मेले से पकड़कर उन्हें घर लाया और शादी के बंधन में बांधने की योजना बनाई। 21 वर्ष की आयु में अंतिम बार घर से निकले तथा शुद्ध चैतन्य नाम धारण किया और अपने वस्त्र, आभूषण सब कुछ दान करके 24 वर्ष की आयु में संन्यास की दीक्षा लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम ग्रहण किया। मथुरा पहुंचने पर गुरु विरजानंद से वेद, व्याकरण तथा वैदिक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। शिक्षा की समाप्ति पर गुरु दक्षिणा में उन्हें अपना जीवन गुरु विरजानंद को समर्पित करके समाज और राष्ट्र की सेवा का प्रण लिया। ये जहां भी जाते वेद और वैदिक साहित्य के अनुसार एक ईश्वर की साधना का रहस्य समझाते और समाज में फैली बाल विवाह, सती प्रथा, छुआछूत आदि बुराइयों के प्रति जन

जागरण का शंखनाद करते। उनके द्वारा सत्य के प्रहार तथा प्रचार एवं कटाक्ष से परेशान होकर अंग्रेजों ने नन्हीं भक्तन नामक महिला के माध्यम से उनकी जीवन लीला समाप्त करने का षड्यंत्र रचा और उन्हें दूध में जहर मिलाकर पिलाया, जिससे उन्होंने दीपावली के दिन 30 अक्टूबर,1883 को अपने शरीर का त्याग किया।

आर्य समाज की स्थापना

स्वामी दयानन्द ने 10 अप्रैल, 1875 (वि.स. चैत्र शुक्ल पंचमी 1932) शनिवार के दिन मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की[2] और संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति तथा संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य रखा। स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के नियमों एवं उद्देश्य में ईश्वर, सत्य और धर्म तथा संसार का उपकार इन विषयों पर केंद्रित दस सूत्र विश्व को दिए जिनके आधार पर कालांतर में आर्य समाज ने स्वतंत्रता प्राप्ति, शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा समाज सुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद और वैदिक साहित्य तथा वेदभाष्य के प्रकाशन के लिए अजमेर में परोपकारिणी सभा की स्थापना की। वर्तमान में विश्व के अधिकांश देशों में आर्य समाज की स्थापना और आर्य समाज द्वारा संचालित विभिन्न शिक्षण संस्थान कार्य कर रहे हैं तथा शिक्षा के क्षेत्र में स्कूलों के संचालन के साथ-साथ समाज सेवा तथा भारतीय सांस्कृतिक विरासत और वैदिक ज्ञान परंपरा की मशाल जला रहे हैं। उनके दार्शनिक साहित्य में ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, स्वमंतव्या मंतव्य प्रकाश, वेदांतीथ्यांति निवारणम, अद्वैत मत खंडन और वैदिक साहित्य में वेदभाष्य और उनसे संबंधित ऋग्वेद, यजुर्वेद भाष्य चतुर्वेद विषय सूची आदि प्रमुख हैं। वे अपने जीवन काल में चारों वेदों का भाष्य नहीं कर पाए, उनके अधूरे वेद भाष्य को कालांतर में आर्य विद्वानों ने पूर्ण किया। कर्मकांड विषयक साहित्य में पंचमहायज्ञ विधि, संस्कार विधि और आर्याभिविनय प्रमुख हैं। अष्टाध्यायी भाष्य और वेदांग ऐसे ग्रंथ हैं जो संस्कृत व्याकरण को समझने के लिए उपयोगी हैं। स्वामी दयानन्दकृत 'आत्मचरित्र' हिंदी साहित्य की सर्वप्रथम आत्मकथा है। इसके अतिरिक्त इंद्र वृत्रासुर, गीतम अहिल्या के वैदिक आख्यानों का भी उन्होंने वर्णन किया है। "सत्यार्थ प्रकाश" उनकी एक ऐसी कालजयी पुस्तक है जिसमें ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव विभिन्न मतों की समीक्षा आदि विषय प्रमुखता से वर्णित हुए हैं।[3] गोकरुणानिधि, व्यवहारभानु, संस्कृत वाक्य प्रबोध आदि कुछ ऐसे ग्रंथों की भी उन्होंने रचना की है जो भारतीय कृषि और गोवंश तथा व्यावहारिक ज्ञान के लिए उपयोगी हैं।

ऐतिहासिक मान्यताएँ

स्वामी दयानन्द की इतिहास विषयक मान्यता है कि किसी भी देश, जाति, समुदाय का इतिहास उसके गौरवपूर्ण अतीत का परिचायक होता है और वह वर्तमान में भविष्य की भी दशा और दिशा का ज्ञान कराता है। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में सृष्टि की उत्पत्ति के प्रसंग में लिखते हैं मनुष्य की प्रारंभिक सृष्टि तिब्बत में हुई। यहीं से सारे विश्व में मानव सभ्यता का विकास हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आदि ग्रंथों में विदेशी विद्वानों की इस अवधारणा का खंडन किया है कि 'आर्य भारत के मूलनिवासी न होकर बाहर से आए। सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं—किसी संस्कृत ग्रंथ या इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आए और यहां के जंगलों में रहने वालों से लड़ कर विजय पाकर उन्हें निकाल के इस देश के राजा हुए।'

उन्होंने रामायण कालीन एक युद्ध में महारानी कैकेयी द्वारा महाराजा दशरथ के प्राण बचाने के अद्भुत कौशल का वर्णन करके[4] यह प्रमाणित किया है कि प्राचीन काल में महिलाओं की शिक्षा तथा सामाजिक सम्मान और युद्ध में भाग लेने का उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। महाभारत काल में भी आर्यों का विश्व में चक्रवर्ती साम्राज्य था। भगवान श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ तथा विश्व के अनेक राजाओं की महाभारत के युद्ध में भागीदारी इसका प्रमाण है। अर्जुन का विवाह पाताल लोक की राजकुमारी उलोपी के साथ होने का उल्लेख भी यही दर्शाता है कि भारतीय राजाओं का पूरे विश्व में प्रभुत्व रहा है। सत्यार्थ प्रकाश के 11वें समुल्लास[5] में आर्यवर्त के राजाओं की वंशावली का विस्तृत उल्लेख करते हुए वे कहते हैं— इंद्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमंत महाराज यशपाल पर्यंत राज्य किया जिनमें श्रीमान महाराज युधिष्ठिर से महाराज यशपाल आदि अनेक राजा हुए हैं। 'महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि, महर्षि आए थे, सब एक ही भोजनशाला में भोजन किया करते थे, तब किसी प्रकार की सामाजिक असमानता नहीं थी।

नारी जाति का उद्धार

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मान्यता हैं 'मातृमान, पितृमान आचार्यमान पुरुषो वेद। अर्थात् माता-पिता और आचार्य मनुष्य का निर्माण करते हैं।[6] इस दृष्टि से जन्म देने, पालन पोषण करने तथा शिक्षा दीक्षा देने में माता-पिता और आचार्य का स्थान सर्वोपरि है। मध्यकाल में विभिन्न जातियों के युद्ध में विपरीत असर नारी जाति पर पड़ा और उसे मात्र भोग की वस्तु माना जाने लगा, जबकि प्राचीन वैदिक काल में नारी ऋषिकाएं, विदूषी हुई जिन्होंने वेद के मंत्रों का दर्शन किया। मैत्रेयी, गार्गी, सीता, लक्ष्मीबाई आदि महिलाओं ने समाज का नेतृत्व किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने तत्कालीन नारी जाति की दुर्दशा को देखकर उनके प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास को दोहराया और नारी की शिक्षा तथा समाज में उन्हें उचित स्थान दिए जाने का समर्थन किया। उनका मत है—'16 से 24 वर्ष तक कन्या और 25 से 28 वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है। जिस देश में इसी प्रकार की विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य, विद्या अभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य, विद्या अभ्यासरहित बाल्यावस्था और अयोग्य का विवाह होता है, वह देश दुःख में डूब जाता है।'[7]

स्वामी दयानन्द नारी को गृहस्थ जीवन का आधार बताते हुए यजुर्वेद 17.4 मंत्र की व्याख्या में लिखते हैं—'नारी न केवल गृहस्थ जीवन की अपितु मानव समाज की आधारशिला है अतः उसका सुशिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत होना अनिवार्य है। जिस गृहस्थाश्रम में धार्मिक विद्वान और प्रशंसायुक्त पंडित स्त्री होती है वहां दुष्ट काम नहीं होते। स्त्री संतान को शिक्षा देने वाली है इस संबंध में ऋग्वेद 6.4.8.12 में लिखते हैं—वह स्त्री धन्य है जो अपनी संतानों को विद्या और सुंदर शिक्षायुक्त करने व कराने का निरंतर प्रयत्न करती है।[8] विवाह संस्कार में राष्ट्रभृत यज्ञ में आहुतियां प्रदान करते हुए पति-पत्नी दोनों राष्ट्र के विकास और रक्षा के लिए अपना कर्तव्य निभाने का संकल्प व्यक्त करते हैं।

वेद भाष्य

स्वामी दयानन्द सरस्वती की यह मान्यता है कि भारत में वेदों का भाष्य महीधर आचार्य सायण और स्कन्द स्वामी आदि विद्वानों द्वारा कर्मकाण्ड को केंद्र में मानकर किया गया है और मैक्समूलर, उब्बट आदि विदेशी विद्वानों ने वेदों के यथार्थ को बिगाड़ने तथा ईसायत के प्रचार को अग्रसर करने के उद्देश्य से वेद के अर्थों को विकृत किया ताकि वेदों में वर्णित ज्ञान, विज्ञान, कर्म और उपासना के वास्तविक रहस्य को भारतीय परंपरा से अलग किया जा सके। इस संबंध में मैक्समूलर ने भारतमंत्री ड्यूक आप आर्गआइल को 16 दिसंबर, 1868 ई. को अपने पत्र में लिखा था। दि एंसियंट रिलीजन ऑफ इण्डिया इज़ डूम्ड एण्ड इफ क्रिश्चयनिटी डज़ नॉट स्टेप इन वूज फॉल्ट इट बी। मैक्समूलर ने वेदों का भाष्य जिस दुराग्रह और कुंठित मानसिकता से किया था उसका नमूना सन् 1868 ई. में उनके द्वारा अपनी पत्नी के नाम लिखे पत्र में स्पष्ट होता है।[9]

मैक्समूलर की वेदों के प्रति क्या अवधारणा थी? वह इन संदर्भों में क्लिंटन ने अपनी पुस्तक में भी लिखा है—दि वेदाज़ केन हार्डली बी एक्ज़ेरेटेड लार्ज नम्बर्स ऑफ दि वैदिक हाइम्स आर चाइल्डिश इन दि एक्सट्रीम टेडियस एण्ड कॉमन प्लेस। वास्तव में अंग्रेज विदेशी विद्वानों ने एक सोची-समझी रणनीति एवं षड्यंत्र के तहत भारतीयों में मानसिक तौर पर हीन भावना को भर दिया और शिक्षा तथा व्यवहार में स्वयं को अंग्रेज दिखाने की होड़ भारतीयों में बढ़ती चली गई जो आज भी अपने चरम पर है। भारतीय शिक्षा पद्धति को मिटाकर अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को थोपना भारतीय संस्कृति को मिटाने तथा विकृत करने का लॉर्ड मैकाले का सफल षड्यंत्र था जिस के संबंध में उसने स्वयं लिखा था[10]—अंग्रेजी शिक्षा भारत के लोगों को ऐसा बना देगी जो खून और रंग में भारतीय होंगे परंतु उनकी रुचि अंग्रेजी में होगी, उनके विचार और नैतिकता पर अंग्रेजीमत का पूरा प्रभाव होगा।' स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों का भाष्य प्राचीन वैदिक आचार्यों के भाष्यों के आधार पर किया। निरुक्त की निर्वचन प्रक्रिया के लिए यास्क, पतंजलि तथा पाणिनि आदि ऋषियों के ग्रंथों का अनुसरण करते हुए वेदों के अर्थ को वैज्ञानिक, व्यावहारिक और आध्यात्मिक आधार पर वैदिक शब्दों के यौगिक, आध्यात्मिक और याज्ञिक तथा आधिभौतिक अर्थों के आधार पर वेदों का भाष्य किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदों को अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर की रचना मानते हैं। वेदों की रचना, सृष्टि की रचना के साथ साथ हुई।[11]

दार्शनिक मान्यताएं

ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन अनादि, शाश्वत तत्व सृष्टि की रचना, पालना, मनुष्य, प्राणी, औषधि, वनस्पति की संरचना, मनुष्य शरीर की उपादेयता, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति और समस्त सांसारिक दुखों से छूटकर

मुक्ति के परम आनंद का भोग, ये सभी दर्शन के विषय स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रंथों में वर्णित हैं। वे ईश्वर की परिभाषा में लिखते हैं जीव अल्पज्ञ। जीवात्मा अपने-अपने कर्मों का भोग करके सुख-दुख, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, लाभ-हानि आदि को प्राप्त होता है। प्रकृति सत्व, रज, तम इन तीन तत्वों से मिलकर बनती है और सृष्टि की रचना के समय, सृष्टि काल में और प्रलय अवस्था में परमाणु रूप में अवस्थित रहती है।[12]

कर्म

यजुर्वेद 16.36 में आगे लिखते हैं- मनुष्य को चाहिए कि जो कुछ कर्म करें तो अच्छी प्रकार विचार और शुद्ध उत्साह से करें। ऋग्वेद 1.2.0 में लिखते हैं—'जैसे कर्म किया करते हैं वैसे ही जन्म और भोग मनुष्य को प्राप्त होते हैं। कर्म मनुष्य के अधीन हैं जबकि कर्मों का फल ईश्वर की व्यवस्था के अधीन है। अतः मनुष्य जो भी कर्म करता है उसके संस्कार सूक्ष्म शरीर पर जन्म जन्मांतर में साथ बने रहते हैं।'[13]

उपासना

पवित्र गुफा कर्म स्वभाव युक्त सर्वव्यापक ईश्वर के समीप हम जन और हमारे सभी ईश्वर उपासक जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को उपासक जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा साक्षात् करना 'उपासना' कहलाती है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के उपासना विषय में वेद मंत्र की व्याख्या करते हुए भी लिखते हैं मुक्ति का उत्तम साधन उपासना है।[14] इसलिए जो विद्वान लोग हैं वे सम्पूर्ण जगत और सब मनुष्यों में व्याप्त ईश्वर को उपासना से अपनी आत्मा के साथ युक्त करते हैं, यही उपासना की योगसम्मत विधि है।

राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार तथा पत्रकारिता

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी। उनकी शिक्षा संस्कृत भाषा में हुई और उन्होंने वेद, वेदांग, वैदिक साहित्य, व्याकरण आदि का संस्कृत में अध्ययन किया। वे प्रारंभ में संस्कृत भाषा में ही प्रवचन तथा वार्तालाप करते थे परंतु उससे अधिक लोगों के साथ उनका संपर्क नहीं हो पाता था। इसलिए उन्होंने हिंदी को आर्यभाषा मानकर अपने ग्रंथों की रचना भी हिंदी में की और संस्कृत के साथ-साथ हिंदी भाषा में शिक्षा प्राप्त कराने के लिए भी बल दिया। उनका यह मंतव्य था कि 'जब पांच वर्ष के लड़का-लड़की हों तव देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावे, अन्य देश की भाषाओं के अक्षरों का भी।[15] क्योंकि भारतीय ज्ञान परंपरा संस्कृत तथा हिंदी और अन्य प्रांतीय भाषाओं में उपलब्ध है। अतः वे देवभाषा संस्कृत, आर्य भाषा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के शिक्षण-प्रशिक्षण को आवश्यक तथा उपयोगी मानते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1876 ई. में शाहजहांपुर में आर्यभूषण पत्रिका का संपादन किया। भारत सुदशा समर्थक और बाद में भारत सुदशा प्रवर्तक पत्रों का संपादन करते हुए उन्होंने हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। अपने देशवासियों के लिए स्वयं अपनी राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से साहित्य सृजन होगा तो राष्ट्र में एकता एवं संगठन भी होगा। इससे परस्पर संपर्क भी से निश्चय ही बढ़ेगा। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने व्याख्यान में कहा था 'मैं तो वह दिन देखना चाहता हूं जब हिमालय से लेकर सागर तक एवं सारे ब्रह्मावर्त में देवनागरी लिपि में आर्यभाषा हिंदी को अपनाया जाएगा।[16] थियोसोफिकल सोसायटी के अध्यक्ष कर्नल हेनरी स्टील ऑलकाट ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के राष्ट्रभाषा प्रेम के संबंध में कहा था 'समरत भारत में स्वामी दयानन्द से बढ़कर हिंदी और संस्कृत का कोई प्रवक्ता हमारे देखने में नहीं आया।'

वर्ण व्यवस्था

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के पुरुष सूक्त[17] में स्वामी दयानन्द एक मंत्र के व्याख्यान में लिखते हैं- गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर ही ब्राह्मण आदि आर्य वर्णों की व्यवस्था की जाती है। चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदस्य जो-जो पुरुष व स्त्री हों वह-वह उसी वर्ण में गिने जावे। वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण वर्ण के लिए है, वैसा ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के लिए भी बराबर है, क्योंकि वेद ईश्वर प्रकाशित हैं। गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर वर्ण का परिवर्तन हो सकता है। शुद्र वेद के अध्ययन-अध्यापन से ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण शास्त्रोक्त कर्तव्यों का पालन न करने से शूद्र भी हो सकता है। वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए जन्म से नहीं। जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस-उस वर्ण का उसे अधिकार देना, ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्षों को भय होगा कि जो हमारे संतान दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जाएंगे, संतान भी डरते रहेंगे कि जो हम उत्तम चाल-चलन

और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा।[18] इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती जन्म के आधार पर जातिवाद का समर्थन न करके गुण कर्म स्वभाव के आधार पर उन्नति और उच्च वर्ग को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करते हैं जबकि यजुर्वेद 31.11 में राष्ट्ररूपी शरीर में ब्राह्मण को शिर भाग के तुल्य, क्षत्रिय को भुजा के समान, वैश्य को मध्य भाग के समान और शूद्र को चरणों के समान बताया गया है।

धार्मिक मान्यताएं

वेदोऽखिलोधर्ममूलम्—वेद धर्म का मूल है। धर्म अर्थात् सत्य का आचरण और असत्य का त्याग। मनुष्य को सबसे यथा योग्य, सुख-दुख, हानि लाभ में सबसे श्रेष्ठ, व्यवहार करना चाहिए। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में महर्षि दयानन्द सरस्वती वर्णन करते हैं- सब मनुष्य लोग ईश्वर के सहाय की इच्छा करें क्योंकि उसके सहाय के बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उसका अनुष्ठान पूरा नहीं हो सकता। राष्ट्र की उन्नति एवं समग्र विकास के लिए धार्मिक होना आवश्यक है। जब तक आप धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुराचार होते हैं तव सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। "यतो निश्रेयससिद्धि स धर्म।"[19] जिससे मोक्ष की सिद्धि हो, वही धर्म है।

योग एवं अध्यात्म

ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन योग पद्धति का अनुसरण किया है। उनका कथन है कि अष्टांग योग के माध्यम से व्यक्ति अपने मन बुद्धि इंद्रियों पर संयम करता हुआ जीवात्मा की उन्नति के लिए प्रयासरत होता है। यजुर्वेद भाष्य 1.76.79 में लिखते हैं[20] जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब सिद्धि प्राप्त होती हैं, उससे कहीं से ना रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जाया जा सकता है।

राजनीतिक चिंतन एवं लोकतंत्र

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सिद्धांतों एवं मंतव्यों का उल्लेख वेद तथा प्राचीन वैदिक विचारधारा के आधार पर किया है। वेद का मंत्र है "स्वराज्याय यतेमहि अर्थात् हम सदैव स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील रहें।" अर्थात् स्वराज्य की प्राप्ति के लिए और राष्ट्र के सतत विकास एवं संपन्नता के लिए समर्पित रहें। ऋग्वेद 16.17.1 के व्याख्यान में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं- हमको साम्राज्य अधिकारी सद्या कीजिए तथा हमारा स्वराज्य सदा बढ़े। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। जब तक समस्त देशवासी एक ही धर्म के अनुयायी एक ही भाषा बोलने वाले तथा एक ही प्रकार के आचार विचार एवं व्यवहार को धारण कर एक ही लक्ष्य की पूर्ति हेतु समर्पित नहीं हो जाते तब तक स्वदेश की एकता तथा इसकी सर्वांगीण समृद्धि स्वप्न मात्र रहेगी।' सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास में लिखते हैं—परदेसी स्वदेश में व्यवहार करें या राज्य करें तो बिना दारिद्रय और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता है। आर्याभिविनय[21] में प्रार्थना करते हुए वेद मंत्र के व्याख्यान में लिखते हैं—अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न रहें तथा हम लोग पराधीन ना हों। 'स्वयंभू राजा से लेकर पांडव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा तत्पश्चात् परस्पर विरोध से लड़कर नष्ट हो गई क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी अन्यायकारी विद्वान लोगों का राज्य बहुत दिन तक नहीं चलता।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय कहलाता है। सबसे पहले धर्म, धर्मपूर्वक अर्थ का उपार्जन फिर धर्म और अर्थ से काम की पूर्ति और अंत में निष्काम कर्म करके मोक्ष की प्राप्ति। अर्थ अर्थात् धन का उपार्जन धर्मपूर्वक किया जाना चाहिए, उसमें पाप और अत्याचार का अंश न हो, ऐसा भारतीय संस्कृति को अभीष्ट रहा है। यहां स्वामी दयानन्द सरस्वती देश देशांतर में व्यापार करने के लिए प्रेरित करते हैं और भारत का प्राचीन इतिहास रहा है कि भारत और विश्व के अन्य समुदायों के साथ प्राचीन काल से ही वस्तुओं का आदान प्रदान करते हुए सड़कों और समुद्र के मार्ग से व्यापार होता चला आ रहा है। आयात और निर्यात की यह प्राचीन परंपरा आज भी जारी है।[22]

यज्ञ विज्ञान और पर्यावरण

आर्य समाज की स्थापना करते हुए छठा नियम बनाया 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति करना। यदि व्यक्ति शरीर से स्वस्थ है, आत्मिक उन्नति नहीं है तो सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती है और आत्मिक बल है परंतु शरीर निरोग नहीं है तब भी सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती है। इसीलिए स्वामी

दयानन्द पंच महायज्ञ की विधि बताते हुए नित्य कर्मविधि में कहते हैं- ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्य होने से शरीर के सुख, व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सिद्धि होती है। उससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब सिद्ध होते हैं। यज्ञ के माध्यम से पर्यावरण की शुद्धि होती है इसके संबंध में उन्होंने उल्लेख किया है सुगंधित, पुष्टिकारक, मिष्ठानयुक्त और रोगनाशक इन चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके होम करने से जगत का अत्यंत उपकार होता है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखते हैं[23] वायु की सुगंधि से परमाणुओं से होम द्वारा आकाश में चढ़कर वृष्टि जल को शुद्ध कर देता है और उससे वृष्टि भी अधिक होती है क्योंकि होम कर के नीचे गर्मी अधिक होने से जल भी ऊपर अधिक चढ़ता है। शुद्ध जल और वायु के द्वारा औषधि भी अत्यंत शुद्ध होती है। ऐसे प्रतिदिन सुगंध के अधिक होने से नित्यप्रति अधिक सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने से बिना दूसरा किसी भी प्रकार से होना असंभव है। ऋग्वेदादिभाष्य के वेद विषय में स्वामीजी ने पंच महायज्ञों में ग्रहा यज्ञ, देव यज्ञ, वलिवैश्वदेव यज्ञ, ऋयज्ञ और अतिथि यज्ञ का उल्लेख किया है[24] जिनके अनुष्ठान से मानव सुख को प्राप्त होता है। उनका कथन है अग्नि के लिए जल, पवन की शुद्धि व ईश्वर की आज्ञा पालन के लिए जो हवन अर्थात दान करते हैं वह अग्निहोत्र सभी के कल्याण के लिए अत्यंत उपयोगी है।

आर्य और उनका आदि देश भारत

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ऋग्वेद 9.6.39 में स्वामी दयानन्द सरस्वती समस्त विश्व को आर्य अर्थात श्रेष्ठ बनाना आर्य समाज का लक्ष्य बताते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस विदेशी मानसिकता का घोर विरोध किया और वेद, वैदिक साहित्य तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं यही उनका जन्म स्थान और कर्मभूमि रही है। स्वामीजी आर्य की परिभाषा में आर्योद्देश्यरत्नमाला में लिखते हैं[25]—जो श्रेष्ठ स्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्य विद्या आदि गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं, उनको आर्य कहते हैं। स्वामीजी का मत है कि सृष्टि का प्रारंभ त्रिविष्टप-तिब्बत में हुआ और हिमालय से विश्व के अन्य भागों में मनुष्य जाति का विस्तार होता चला गया। ईरान आदि देशों में आज भी यही पढ़ाया जाता है—कुछ हजार साल पहले आर्य लोग हिमालय से उतर कर आए और यहां का जलवायु अनुकूल पाकर ईरान में बस गए।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन के पुरोधा सूत्रधार एवं महानायक कहलाते हैं जिन्होंने अपने प्रवचनों, शास्त्रार्थों, साहित्य सृजन आदि द्वारा भारतीय प्राचीन संस्कृति, धर्म, दर्शन, लोकजीवन का सही पक्ष विश्व के सामने रखा और धीरे-धीरे उनके सिद्धांत विश्व में प्रचारित होने लगे हैं। उन्होंने अपना कोई मत नहीं चलाया अपितु वेद और वैदिक साहित्य के आधार पर प्राचीनतम भारतीय ज्ञान परंपरा का पुनः उद्धार किया और समाज में पनप रही कुरीतियों का खंडन करते हुए सामाजिक न्याय और पक्षपात रहित व्यवस्था बनाए रखने के लिए मार्गदर्शन किया उनके विचार आज भी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं। स्वामीजी के जन्म के 200 वर्ष बाद भी उनका चिंतन उनकी विचारधारा उनके सिद्धांत सबका मार्गदर्शन कर रहे हैं इसी का प्रतिफल है कि आज विश्व में हजारों संस्थाएं वेद और आर्य समाज के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करने में संलग्न है और विश्व की शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए प्रतिबद्ध हैं।

संदर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. कर्म, स्वामी दयानन्द सरस्वती, सूर्य भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं. 39
2. सिंह, डॉ.कर्म, स्वामी दयानन्द सरस्वती जीवन एवं दर्शन, मानस प्रकाशन संजौली, शिमला 1981, पृ.सं. 21-22
3. सिंह, डॉ. कर्म, दयानन्द साहित्य दर्शन, ज्ञान भंडार प्रकाशन, लोअर बाजार, शिमला, 1978, पृ.सं. 76
4. सिंह, डॉ. कर्म, स्वामी दयानन्द के ओजस्वी विचार, ज्ञान गंगा प्रकाशन, चावड़ी बाजार, नई दिल्ली, 1981, पृ.सं. 109
5. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, परोपकारिणी सभा अजमेर, राजस्थान, 2005, पृ.सं. 207
6. उपरोक्त, पृ.सं. 271
7. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, संस्कार विधि, गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं. 69
8. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, ऋग्वेद भाष्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, 1997, पृ.सं. 29
9. विद्यामार्तंड, पंडित धरमदेव, वेदों का यथार्थ स्वरूप, गुरुकुल कांगड़ी,विश्वविद्यालय, हरिद्वार, 2003, पृ.सं. 98

10. उपरोक्त, पृ.सं. 124-125
11. सक, युधिष्ठिर मींया (सं.), ऋग्वेदादिभाष्य स्वामी दयानन्द, रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशन, सोनीपत, हरियाणा, 1980, पृ.सं. 278
12. सिंह, डॉ. कर्म, स्वामी दयानन्द सरस्वती के दार्शनिक मंतव्य, सुरेन्द्र कुमार एण्ड संस, नई दिल्ली, 2002, पृ.सं. 302
13. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, यजुर्वेद भाष्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, 1997, पृ.सं. 405
14. सक, युधिष्ठिर मींया (सं.), स्वामी दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशन, हरियाणा, 1980, पृ.सं. 209
15. मल्होत्रा, डॉ. शांता, स्वामी दयानन्द के राजनीतिक विचार, के.के. पब्लिकेशंस, आनन्द पर्वत, नई दिल्ली, 1999, पृ.सं. 100
16. भारतीय, भवानीलाल (सं.), स्वामी दयानन्द के शास्त्रार्थ प्रवचन, आर्य प्रकाशन, अजमेरी गेट, नई दिल्ली, 1999, पृ.सं. 160
17. सक, युधिष्ठिर मींया (सं.), स्वामी दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशन, हरियाणा, 1980, पृ.सं. 191
18. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, परोपकारिणी सभा अजमेर, राजस्थान, 2005, पृ.सं. 409
19. कणाद, महर्षि, वैशेषिक दर्शन, गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ.सं. 39
20. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, यजुर्वेद, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, सूक्त 1.76.76
21. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, आर्याभिविनय, परोपकारिणी सभा अजमेर, 2001, पृ.सं. 108
22. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, परोपकारिणी सभा अजमेर, राजस्थान, 2005, पृ.सं. 502
23. सक, युधिष्ठिर मींया (सं.), स्वामी दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशन,हरियाणा, 1980, पृ.सं. 216
24. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, पंचमहायज्ञविधि, सत्यधर्म प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ.सं. 45
25. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, आर्योद्देश्यरत्नमाला, आर्य प्रकाशन, अजमेर गेट, नई दिल्ली, 1987, पृ.सं. 69-70